कला-कर्म पर x टीके : जालीय दुनिया की ज़िद्दी संरचनाएँ

रक्स मीडिया कलेक्टिव

I

शिल्पकार

शुरुआती आधुनिकता की सीमावर्ती दहलीज़ पर खड़ा शिल्पकार नए युग का सूत्रपात करता है। अपने यांत्रिक अक्षरों, नपने, छेनी, कागज़, नयी स्याहियों, कृत्रिम रंगों और लेन्सों से एक नए युग का उद्घोष, एक नयी चेतना में जहाँ हाथ, आँख और दिमाग़ी कामों के लिए एक आदरभाव है, के साथ-साथ एक ऐसी संवदेना में करता नज़र आता है जिसमें उत्सुकता, खोज, परस्पर सहयोग, सुरुचि, किफ़ायत और उपयोगिता शामिल हैं। यह 'शिल्पकार' ही मसलन टाइप सेंटर, दर्ज़ी, ब्लॉक बनाने वाला, बढ़ई, बुनकर, हिसाब करने वाला, नेत्र चिकित्सक, मुंशी, नानबाई, रंगरेज़, संगतराश, दाई, मिस्त्री और रसोइया हर आधुनिक कार्य-व्यापार का पुरखा है। नए युग की तरफ़ इशारा करता हुआ शिल्पकार इसमें अपने स्थान को लेकर स्वंय निश्चिंत नहीं होता।

पेशों (जो हमारा समय लेते हैं) के व्यवसायों (अर्थतंत्र के संस्थागत-संरचनात्मक क्षेत्र) में रुपांतरण की नींव रख रहे शिल्पकार की इस छवि में कलाकार और श्रमिक दोनों की प्रत्याशा की जाती है। ज़िन्दगी के कामकाज़ी जीवनों में, व्यक्तियों के कौशलों और चल पूंजी में रुपांतरण की यह मध्यस्थता करता है। शिल्पकार ही वह साधन है जो हमें समकालीन दुनिया तक लाया है। स्वायत्त, रचनात्मक और एक विचारशील 'स्व' की हमारी अवधारणा जब जन्म के लिए प्रतीक्षारत है, तब यह शिल्पकार ही वह धैर्यवान दाई है जो असमय जन्मे बच्चे की सेवा करती है, उसका वज़न करती है और उस नाभि-नाल को काटती है जो इसे एक पुरानी विरासत से बाँधे होती है। यही शिल्पकार हमें वह बनाता है जो हम हैं।

बावजूद इसके शिल्पकार न तो परावलंबी श्रमिक जैसा गुमनाम होता है और न उसमें प्रतिभाशाली कलाकार जैसी अति-वैयक्तिक अहमन्यता होती है। शिल्पकार न तो बे-चेहरा होता है और न मशहूरो-मारूफ़। वह न तो फ़ैक्ट्री से जुड़ा होता है और न ही प्रदर्शनी-कक्षों से। वह तो शिल्पशालाओं, कारख़ानों और सड़कों पर दूसरे शिल्पकारों और नौसिखुओं के साथ ज्ञान और वस्तुओं का निर्माण और आदान-प्रदान करता है। शिल्पकार न तो गोदामों में भर कर रखी जाने वाली वस्तुओं का थोक-उत्पादन करता है और न कला-दीर्घाओं, संग्रहालयों और नीलामघरों की शोभा बढ़ाने वाली दुर्लभ और बेजोड़

वस्तुओं का। उसके हाथों की वस्तुएँ और सेवाएँ न सर्वोपलब्ध होती हैं और न ही दुर्लभ। इनके व्यापार का आधार ऐसे घने संजालों में वस्तुओं की उपादेयता है जिसका एक पक्ष शिल्पकार ख़ुद है; यह विनिमय स्टॉक की सट्टेबाज़ी या चीज़ों के भंडार की चंचलता से चालित प्रतिस्पर्द्धी वैश्विक बाज़ार या किसी विशिष्ट हस्ताक्षर का मोहताज़ नहीं है। ज्यों-ज्यों गोदामों व नीलामघरों की तादाद बढ़ती जाती है और कारख़ाने उजड़ते जाते हैं, शिल्पी की जीविका का सवाल मुश्किल होता जाता है। शुरुआती पूंजीवाद के हाशिए पर खड़ा शिल्पी ख़ुद को इतिहास से बेदख़ल कर लेता है, और दैनंदिन कार्यभार व रचनात्मकता के दो ध्रुवों पर क्रमशः बेनाम मज़दूर और जीनियस कलाकार आसीन हो जो हैं : कला और कर्म में फाँक पैदा हो जाती है।

II

अमूर्त श्रम

अमूर्त श्रम के फल पर आधारित बौद्धिक संपदा के एक नए अर्थतंत्र के उदय के साथ ही, पुनः एक बार, श्रमिक और कलाकार की कार्यात्मक भूमिकाओं के बीच कोई कड़ा विभाजन मुश्किल होता जा रहा है। ऐसा क्यों हैं, यह समझने के लिए हमें आज दुनिया में क्रमशः बढ़ते मूल्य उत्पादन के नए तरीक़ों पर एक सरसरी निगाह डालनी होगी।

मौजूदा दौर में चतुर्दिक फैली सायबरनेटिक प्रक्रियाएँ, महास्तरीय अर्थव्यवस्था की बढ़ोत्तरी, माँग के अनुपात में उत्पादन को संयोजित करने वाली चपल प्रबंधन तकनीक, विश्व-भर में बिखरी असेम्बली लाइन के बढ़ते स्टॉक, आदि ने चीज़ों के उत्पादन को वैश्विक तथ्य का दर्जा दे दिया है। कार, जूते, कपड़े और दवाएँ या अन्य कोई भी उत्पाद कमोबेश सभी जगहों पर एक समान प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित हो रहे हैं। उत्पाद के घटकों के निर्माण, अनुसंधान और डिज़ाइन की प्रक्रियाओं, घटकों का अंतिम संयोजन अब एक ही फ़ैक्ट्री, राष्ट्र-राज्य या आर्थिक-क्षेत्र में केन्द्रित होने की आवश्यकता नहीं रह गयी है। समकालीन औद्योगिक उत्पादन की इस जालीय प्रकृति ने तैयार माल को किसी स्थान विशेष पर निर्भरता से मुक्त कर दिया है। यही कारण है कि हम वैश्विक स्तर पर किसी भी उत्पादन के अनेक मुक्त संस्करण (मान्यता-प्राप्त और ग़ैर-मान्यता प्राप्त दोनों ही तरह के) सहज ही देख सकते हैं। अकसर, मौलिक और इसकी अनुकृति एक ही 'आउट-सोर्स' कार्यशाला में बनी होती है। तादाद में बढ़ोत्तरी के साथ चीज़ों का यँकसापन भी बढ़ता चला जाता है, कार्यात्मक रूप से भले नहीं, पर देखने-भालने में तो ज़रूर।

इस तरह भौतिक स्तर पर दुनिया को अपनी छवि के अनुरूप गढ़ लेने में पूंजी को जितनी अभूतपूर्व कामयाबी मिलती जाती है, इसकी यह ज़रूरत और शिद्दत से बढ़ती जाती है कि वह दुनिया में विविधता लाए, वर्गीकरण के ऐसे नुस्ख़े सोचे जो इसके अपने बनाए मात्रा के पारावार को इस क़दर अनुशासित कर सके कि चीज़ें सर्जनात्मक एकरसता से एक-दूसरे को निरस्त न कर डालें।

किसी भी माल का मूल्य आज उसके वांछित उपभोग द्वारा प्रदत्त (स्थगित) संतोष की नश्वरता-मात्र से तय नहीं होता। बल्कि माल का मूल्य ख़ास तौर पर इससे बैठता है कि वह कितना नश्वर है, उसे किस हद तक सर्वव्यापी और शाश्वत रूप से पुनः उत्पादित किया जा सकेगा। सच पूछें तो अनश्वर, पुनरूत्पादनीय, व सर्वव्यापी को छानकर, प्रतीक-रूप में संघनित करने वाली सूचना इस युग की असली पूंजी है। इसलिए जिन्स अब सिर्फ़ ख़रीदी-बेची जा सकने वाली चीज़ नहीं बल्कि उसमें स्थित वह तत्व भी है, जिसे इस तरह पढ़ा, बूझा या विवेचित किया जा सके कि उसे कूटबद्ध या अकूटित करने के हर दृष्टांत का भी क्रय-विक्रय हो सके। पैसा वाक़ई माल में छुपे अर्थों में है। खाने का माल सोचने लायक़ तो हो ही, प्रयोगशाला में परीक्षण-योग्य भी हो। मूल्य का अंतभुर्क्ति, पूंजी का अपने सघनतम और सूक्ष्मतम रूप में अंतर्कूटन ही तो बौद्धिक संपदा है।

बौद्धिक संपदा का क्या महत्त्व है? इस तरह के सवाल का जवाब पाने के लिए पूंजीवाद द्वारा खुद को समझने व मूल्यांकित करने के लिए जुटाए गए अपने ज्ञानाधार को देखना मानीख़ेज होगा।

'प्राइसवाटर हाउस कूपर्स इंटेलेक्चुअल ऐसेट मैनेजमेंट ग्रुप' से संबद्ध एक ब्रैंड मैनेजमेंट कनसलटेंट, टोनी सैमुअल "इवैल्युएटिंग आई पी राइट्स: इन सर्च ऑफ़ ब्रैंड वैल्यू इन द न्यू इकॉनमी" शीर्षक वाले एक हालिया पर्चे में कहते हैं कि:

"प्रतिस्पर्द्धा की प्रकृति और नए विश्व अर्थतंत्र की गतिशीलता में आए बदलावों का नतीजा यह हुआ कि किसी भी कंपनी के लिए केन्द्रिय महत्त्व के मूल्य उत्पादक स्थूल (जैसे प्लांट और मशीनरी) के बजाय अब सूक्ष्म (जैसे ब्रैंड, पेटेंट, कॉपीराइट, और प्रविधि) हो गए हैं। कंपनियों ने बढ़े हुए व्यवसायिक अवसरों पर लाभ, विशेष तौर से, तकनीकी और ब्रैंडों की सुदूरस्थ बाज़ारों तक पहुँच और इनके प्रतिस्पर्द्धीय महत्त्व का इस्तेमाल करते हुए उठाया है। इसका जायज़ा हमें सूचीबद्ध कंपनियों को 'बुक वैल्यू' के अनुपात में 'मार्केट कैपिटलाइज़्ड वैल्यू' में हुई वृद्धि से मिलता है। पिछले बीस वर्षों के दौरान अमेरिका में यह अनुपात 1:1 से बढ़कर 5:1 का हो गया है।

यूनाइटेड किंगडम में भी यह अनुपात कुछ ऐसा ही है, बैलेंस शीट पर एफ़टीएसई (FTSE) के कैपिटलाइज़्ड वैल्यू की 30 प्रतिशत से भी कम वाली 350 कंपनियों के नज़र आने के साथ। हम यह मानते है कि, बाक़ी 70 प्रतिशत अनांबटित मूल्य ज़्यादातर बौद्धिक संपदा और निश्चय ही, बौद्धिक संपत्तियों में अवस्थित है। ग़ौरतलब है कि, 'बुक वैल्यू' के समक्ष सर्वाधिक अनुपात केवल 'मार्केट कैपिटलाइज़ेशन' वाले सेक्टर कॉपीराइट (जैसे मीडिया सेक्टर), पेटेंट (जैसे टेक्नॉल्जी और फ़ार्मास्युटिकल्स) और ब्रैंड्स (जैसे फार्मास्युटिकल्स, खाद्य और पेय, मीडिया और आर्थिक सेवाओं) पर अत्यधिक निर्भर है।"[1]

इस परचे में आगे एलन शेफ़र्ड को उद्धृत किया गया है। वही एलन शेफ़र्ड जो कभी 'ग्रैंड मेट्रोपोलिटन पीएलसी' के चेयरमैंन रह चके हैं। ग्रैंड मेट्रोपोलिटन पी एल सी ब्रैंडेंड खाद्यों, पेयों और खुदरा उत्पादों के क्षेत्र में सक्रिय एक अंतर्राष्ट्रीय समूह था और 1997 में गिनेस् के साथ इसके विलय का प्रतिफल 'डिएगो समूह' है जो आज की तारीख़ में 'स्मरनॉफ़' से लेकर 'बर्गर किंग' जैसे विविध ब्रैंडों को नियन्त्रित करता है।

"ब्रैंड हमारे व्यवसाय का केन्द्र है। यदि हम चाहते तो यह भी कर सकते थे कि अपने ब्रैंडों का मालिकाना अपने पास रखते हुए अपना सारा उत्पादन, वितरण और सेवा कार्य ठेके पर उठा रखते और तब भी हम सफल होते रहते और फ़ायदा उठाते रहते। ये हमारे ब्रैंड ही हैं जिसके चलते हमें आज मुनाफ़ा हो रहा है और ये ही ब्रैंड भविष्य में मुनाफ़े की गारंटी हैं।"

हमने यहाँ ब्रैंड-चर्चा विस्तार से इसलिए की है, क्योंकि आज हम जिधर देखें हमें ब्रैंड ही तो नज़र आते हैं। आज की तारीख़ में कोई लैंडस्केप पेंटर अगर शहरी भूदृश्य को चित्रित करना चाहे तो उसके लिए यह सलाह मुफ़ीद होगी कि वह बौद्धिक संपदा के तेज़-तर्रार वकील से सहज संपर्क में रहे। और जो बात ब्रैंडों के बारे में सही है, वही सूक्ष्म के दूसरे रूपों, जैसे संगीत, या छवियों या सॉफ़्टवेयर पर भी लागू होती है।

बौद्धिक संपदा का क़ानूनी निज़ाम सभी संभव सांस्कृतिक आदान-प्रदान और उत्पादन प्रक्रियाओं को अपनी ज़द में ले लेने की प्रक्रिया में है। कला रचने या उसे समझने की सारी कोशिशों को देर-सबेर इस व्यापक नियंत्रण से दो-चार होना पड़ेगा। आसार हैं कि कलाकारों की रचनाओं या उनके प्रस्तावों को स्वीकार करने के क्रम में कला-आयोजकों, संग्रहालयों, और कला गैलरियों को बौद्धिक संपदा की वकालत करने वाले की दख़ल और मुहर लेनी पड़ेगी। ये 'वकील-कला-संयोजक' बेशक यह सुनिश्चित करना चाहेंगे कि कहीं कोई कलाकार, सिद्धांतकार, लेखक, या प्रैक्टिशनर जाने-अनजाने अपने काम के

दौरान किसी बौद्धिक संपदा क़ानून का हनन तो नहीं कर रहा है।

III

श्रमिक कलाकार

इस सूरते-हाल के क्या निहितार्थ हैं? बीसवीं सदी के मज़दूर को एक ऐसे बाज़ार में जीना है जो प्रतीक-उत्पादन को मान देता है। तो उसे अचानक महसूस होता है कि उसके तमाम औज़ार, श्रम व हुनर किसी न किसी हद तक रचनात्मक या विवेचनात्मक काम कर रहे हैं। वह ब्रैंड में चमक भरता है, डेटा जमाता है, अर्थ-संधान करता है, और कोड गढ़ता है। असल वैश्विक फ़ैक्ट्री तो अपने सही अर्थ में स्नायविक प्रक्रियाओं का संजाल है, और औद्योगिक युग की धमन भठ्ठियों और चिमनियों से कतई कम भौतिक नहीं है। इक्कसवीं सदी का मज़दूर भी कलाकार है क्योंकि वह मायने रचकर मूल्य पैदा करता है। अपने रूटीनी काम के तहत वह रचना, शोध व व्याख्या इस तरह करता है कि उसे शोधार्थी या कलाकार माना जाए, ख़ास तौर पर तब जब शोधार्थी या कलाकार से हमारी मुराद ऐसे किरदार से हो जो अर्थ या ज्ञान की रचना करे।

सूचना तकनीक से चालित कॉल सेंटर और रिमोट डेटा आउटसोर्सिंग उद्योग में कार्यरत मज़दूरों की दशा इसकी बेहतरीन मिसाल है, जिसने मज़दूरी की एक नयी वैश्विक संरचना गढ़ी है, और तथाकथित वैश्वीकरण को कलात्मक मंच और रुझान दिया है। ए/एस/एल 'एज़, सेक्स, लोकेशन' (उम्र/लिंग/स्थान)[2] नामक एक हालिया इंस्टॉलेशन में हमने कॉल सेंटरों के कलात्मक/प्रदर्शनात्मक पहलुओं को पेश करने की कोशिश की है।

कॉल सेंटर मज़दूर और उसकी दुनिया[3]

दिल्ली के किसी उपनगर की यह कर्मचारी अपनी कैलिफ़ोर्नियाई बोली में लॉस एंजेलिस की किसी ग़रीब बस्ती के एक क़र्ज़दार से मुख़ातिब है, वह उसे कभी डराती है, कभी फुसलाती है। उसे धमकाते हुए वह खुद इस संभावना से ख़ौफ़ज़दा है कि कहीं वह क़र्ज़ चुकाने से इन्कार न कर दें, कहीं पैसा उसकी कमाई से न काट लिया जाए। वह सात समुन्दर पार है, पर अपने सामने खुले दरीचे से उसे वहाँ के मौसम का हाल पता है, उसकी पूरी कर्मकुंडली इसके सामने खुली है, जिसमें रोज़गार का ब्यौरा है, तो उसके बंदी जीवन का ख़ाका भी। वह गोरा है, गोरी नहीं, पर फ़ोन पर इसकी आवाज़ प्रशिक्षित लहज़े में गोरी है। भारत के सूचना-तकनीक-चालित उद्योग में बैठी यह दूरस्थ एजेंट छद्मवेष-धारण करने में दक्ष है। यह घंटों काम करती है पर अतिरिक्त काम करने के लिए उसे कोई अतिरिक्त ईनाम नहीं मिलता। कुछ महीने पहले उसकी छंटनी हो चुकी थी, और अब तक कोई काम नहीं मिला। इसीलिए यह अपनी कंपनी की तरफ़ से उसे फ़ोन कर रही है। वह पहली दुनिया की तीसरी दुनिया वाली बस्ती में जीता है, जबकि यह तीसरी दुनिया के मुक्त व्यापार परिक्षेत्र में काम करती है। वे एक दूसरे के 'केस' और 'एजेंट' के अलावा किसी और संबोधन से नहीं जानते। उनके बीच की बातचीत उनकी हक़ीक़तों का इन्कार है, कई अस्मिताओं का आग्रह है, हरेक आग्रह का अपना सच है, और यह सब एक साथ होता है।

इस क़िस्म के काम के लिए कल्पनाशीलता, समझदारी, किसी और दुनिका का आवाहान, नक़लनबीसी, सत्याभास व प्रक्षेपण की प्रक्रियाओं के साथ-साथ हक़ीक़त और उसके निरूपण का संतुलित समायोजन ज़रूरी होता है। हमने कहीं और लिखा है कि संजालित वैश्विक पूंजीवाद में खुद को चलाए रखने के लिए दूरी के यथार्थ में नज़दीकी का आभास देना अहम है, पर यहाँ पर हम 'कल्पाना' के कौशल, ज्ञान, भाषा पर अधिकार, तकनीकी महारत, और अभिनय-कौशल के उस संयोग को रेखांकित करना चाहेंगे, जिनकी बदौलत श्रम विश्व स्तर पर उत्पादक और कारगर हो पाता है।

IV

हाशिए

विश्लेषण में सहायक महत्त्वपूर्ण रास्ते कई बार मौजूदा दुनिया के अँधेरे कोनों-अंतरों में छिपे होते हैं। जंग, वैश्वीकरण, आपदाओं, महामारियों और तकनीकी उपलब्धियों के महाख्यान भले ही सुर्खियों में होते हैं, पर जिस तरह कोई नवजात हिमनद किसी बीहड़ में इंच दर इंच खुद को पसारता है उसी तरह दुनिया अनजानी-अनचीह्नी दिशाओं में हुए बदलावों के दम पर भी ख़ामोशी से बदलती रहती है। लोग एक जगह से दूसरी जगह जा रहे होते हैं, उनके जीवन की आशाएँ सुधर रही होती हैं, एक महादेश के लोग दूसरे से दैनंदिन इस्तेमाल के गुर सीखते रहते हैं - तो इन सूक्ष्म तरीक़ों से दुनिया बदलती तो रहती ही है।

तो यहाँ हाशिए पर होना किसी स्थान का द्योतक नहीं है, जैसा कि केन्द्र-परिधि की अवधारणाओं में होता है, बल्कि हाशिए का मतलब एक ख़ास तरह की दृश्यमानता से है। इस नज़रिए से कोई क़िरदार हमारी हक़ीक़त के केन्द्र में रहते हुए भी हाशिए पर हो सकता है, क्योंकि संभव है कि हक़ीक़त प्राथमिक प्रक्रिया में वह चीज़ कम महत्त्व की या देखने में कम नज़र आती हो। मौजूदा वैश्विक अर्थव्यवस्था में कॉल सेंटर का मज़दूर केन्द्रीय भूमिका में होते हुए भी शायद ही हमारी नज़र में है। इस अर्थ में हाशिए पर होने का मतलब 'कर्मक्षेत्र से दूर' होना नहीं है, न ही हमारे सामने घटते संसार की गहमागहमी से 'दरदूरस्थ' होना है।

हाशिए का अपना छवि-क्षेत्र होता है। आइए देखें कि यह छवि क्षेत्र क्या है, और देखें कि अपने कर्म के लिए वहाँ से हमें क्या हासिल होता है?

एक ऐसी लघु शिल्पीय विशिष्टता जो मध्यकालीन पाण्डुलिपियों के संदर्भ में उत्कीर्णन और अभिलेखन से संबंध रखती है, हाशिया टिप्पणी (मारजिनेल्या) कही जाती है।

"हाशिया-टिप्पणीकार" (आम तौर पर नक़लनवीस के शार्गिद) लोकप्रिय कहावतें, व्यंग्य-चित्र, छवियाँ उत्कीर्ण करते थे, जो अकसर लौकिक ज्ञान से प्रकाशित हुआ करती थीं। ये रूपकीय संकेत बाज़ मौक़ों पर 'मास्टर-टेक्स्ट' के प्रमुख आख्यान का एक विरोधी आख्यान भी हुआ करते थे, हालाँकि प्राय: जिसे दृष्टांत-कथा के रूप में जाना जाता है: विचारों और अवधारणाओं में योग दिया करते थे (और कई बार अनभिप्रेत प्रेरणाओं के रूप में विधर्मी-चितंन में भी)। उस जगत के समानांतर जो राजाओं, अभिजनों, नायकों, देवदूतों, दैत्यों और दैवीय शक्तियों से अटा पड़ा है, इन्हीं हाशिया प्रकाशनों में, एक दूसरा जगत बनाते हुए, सामान्य जन - हलवाहे, किसान, भिखारी, रंडियाँ और चोर अकसर उभर कर सामने आते हैं। हमारी उस ज्ञान राशि का जो मध्यकालीन आम जीवन से संबंधित है, एक बड़ा हिस्सा इन्हीं पाण्डुलिपियों के हाशियों पर दिए गए वर्णनों से प्राप्त होता है। कहने को अदृश्य का अभिलेखन हक़ीक़त में ये सूचियाँ यथार्थ से संबंध रखती हैं, उदाहरण के लिए, पियर ब्रेयगेल या हेरोनिमस बॉस्क के तैलचित्रों के हाशिया-प्रदेशों में उपलब्ध वर्णनों की वह अपार राशि जो कपड़ों, व्यवहार, सामाजिक प्रकार और बर्तावों से संबंधित है।

इसी शिल्पीय आदर्श जो हाशियों का इस्तेमाल दृष्टांत-कथाओं के लिये किया करता है कि तद्रुपता को ध्यान में रखते हुए अब हम समकालिक हाशिया छवियों की एक 'गैलरी' प्रस्तुत करना चाहेंगे।

V

पाँच छवियाँ: आपके विचारार्थ

मौजूदा हक़ीक़तों पर की गयी टीकाओं के रूप में, और दुनिया को समझने की अपनी दुविधाओं से उबरने की चेष्टा में हम बार-बार उन्हीं की ओर लौटते हैं - कभी छवि के रूप में कभी डेटा के रूप में, सोच के रूप में तो कभी चिंतन की प्रतिमान के रूप में। हमें लगता है कि अपने-अपने ढ़ंग से यही छवियाँ मौजू कलाकर्मियों के हालात से मुख़ातिब हैं।

छवि एक: दुस्तर समुद्र में नाव खेता एक अजनबी

समंदर में अपना रास्ता बदलती हुई एक नाव थोड़ी देर के लिए समुद्र-तट-रक्षक जहाज़ के संवेदी रेडार से ओझल हो जाती है। उस पर सवार हैं वर्जित इंसानों का एक हुजूम - जो किसी युद्ध या युद्ध के उत्तरकांड से भागा हो सकता है, या लगातार पाँचवीं बार फ़सल न होने से, या शायद किसी बाँध के टूटने से आयी बाढ़ में उसका गाँव-घर बह गया है, संभव है बेरोज़गारी के आलम में उसकी सामाजिक सुरक्षा जाती रही है, या किसी सरकार को अचानक उसके नाम-मात्र से नफ़रत उग आयी है - इस अजनबी साहिल को बड़े ध्यान से देखता है, होठों पर बंदरगाहों के विचित्र नामों को बुदबुदाकर सहलाता है। दुनिया के उनके नक़्शे में सुरक्षित ठिकाने हैं तो ख़तरनाक सीमावर्ती नाके भी, जगहें जहाँ उतरा जा सकता है, जहाँ से गुज़रा जाएगा, जो कहीं भी है, हर जगह, और ये तमाम जगहें नीली रौशनाई के दायरे से चिह्नित हैं, टीकित भी। भूगोल की ऐसी शिक्षा जो उन्होंने ज़लावतनी के विश्वविद्यालय में ली हैं। नीली स्याही के गोलों से घिरी, इस दुनिया के उनके नक़्शे की परिरेखा, कहीं भी और कभी भी, सुरक्षित स्वर्गों, ख़तरनाक सीमा-चौकियों, शरणस्थलों, गुज़रने के रास्तों और पड़ावों से भरी हुई है। लगता है कि जैसे ये निर्वासन के अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में भूगोल के अध्येता हों।

छवि दो: झुग्गी डालता एक 'क़ाबिज़'

तिपाल, रस्सी, बड़े प्लास्टिक के कुछ बड़े पीपे व क्रेट और पके बाँस के खंभे - इस साजो-सामान

को जब कुशल हाथ और तेज़ आँखें आकार देती हैं तो उसे घर का नाम दिया जाता है। इस तरह शहर आया हुआ 'राज्य की संपत्ति' की तख़्ती से लैस ख़ाली ज़मीन को अपना लेता है। लेकिन मुश्किल तो तब शुरू होती है – काग़ज़ात के लिए भाग-दौड़, थोड़ी बिजली, थोड़ा पानी, घर उजाड़े जाने के नियत दिन से थोड़ी मोहलत, नागरिकता के चंद क़ानूनी टुकड़ों के लिए 'मास्टर प्लान' के साथ एक लम्बे छापामार युद्ध का सिलसिला चलता है। एक नया लहज़ा सीखना, नया नाम लेना, नयी जीवनियाँ, कई नए इतिहास गढ़ना ताकि एक अदद राशन-कार्ड बन जाए ताकि बेदख़ली का फ़रमान टल जाए। यह 'ग़ैर-क़ानूनी' आबादी लगातार – दिल्ली में रियो डि जेनेरो में, बग़दाद में – हर तरफ़ बढ़ती जाती है, और अपने पीछे अभी-नहीं-हुए-नागरिकों, और अभी-नहीं-बने-पासपोर्ट-धारियों, और आधे-अधूरे पतों के वैश्विक गणराज्य की दीर्घ-दीर्घोयित छाया छोड़ती जाती है।

तीसरी छवि : सीडी नक़ल करता एक इलेक्ट्रॉनिक पायरेट

उत्तर-पूर्वी दिल्ली के एक उपनगरीय इलाक़े में पन्द्रह वर्ग-गज़ की एक मामूली-सी झोंपड़ी वैश्विक मनोरंजन उद्योग का एक केन्द्र बन गया है। यहाँ जुगाड़ से बिठाए कुछ कंप्यूटर हैं, एक थकेला कोरियाई सीडी-लेखक है, चीन के रास्ते चोरी किए गए कुछ सॉफ़्टवेयर हैं और कुछ ऐसे मीडिया-उद्यमी नौजवान जो कुछ दिन पहले तक बेरोज़गार थे, अब हॉलीवुड या बॉलीवुड की फ़िल्में नक़ल करके बेचते हैं, जिसे आप काम से लौटते हुए किसी चाय-ढाबे पर देख सकते हैं। इस मुक़ाम पर मीडिया अपने वृहत्तर जन-समुदाय से मिलता है। यहाँ बतौर उत्पाद एक अभिनव चीज़ की फ़ौरी मौत होती है, और किसी और चीज के रूप में फ़ौरन पुनर्जन्म भी। और फिर यही आत्मा बग़ैर कोई बड़ी दक्षिणा लिए हर सवाली पर चरणामृत की तरह अपना प्रसाद बरसाती है। इलेक्ट्रॉनिक पायरेसी ज़ंजीर में जकड़े उत्पाद और मुक्त पिक्सेल के बीच प्रवाहित ऊर्जा की अमृतधारा है, गीत-संगीत-नृत्य का संगम कराती भव्य महाकुंभ है।

चौथी छवि : ज्ञान बाँटते चलो : सॉफ़्टवेयर को मुक्त कराता हैकरों का संजाल

पूरी दुनिया में बिखरे प्रोग्रामरों का समुदाय सॉफ़्टवेयर और ज्ञान की लगातार बढ़ती संपदा का, एक ऐसे डिजिटल कॉमन्स का निर्माण करता है, जो मिल्कियत के बाड़ों से बिल्कुल आज़ाद है। सिर्फ़ अपनी फ़ोन लाइन, मोडेम, इंटरनेट ख़ाते, और निजी कंप्यूटर से लैस 'प्रोग्रामरों का यह संजाल एक नयी वैश्विक ख़ामोश बग़ावत में मुब्तिला है। ये बाग़ी कोड, संगीत, इबारत, गणित, तस्वीर या किसी और डिजिटल चीज़ को मुक्त रखने पर आमादा हैं, जो चाहे इन चीज़ों को नेट से उतारे, बदले या बाँटे। समय, कंप्यूटरी संसाधनों और ज्ञान के साझेपन से पोषित यह आज़ादी न केवल उन लोगों को फ़ायदा पहुँचाती है, जो सॉफ़्टवेयर निर्माण के क्षेत्र से जुड़े हैं, बल्कि व्यापक जनसमुदाय भी आपस में संगीत और दीगर मीडिया फ़ाइलों की अदला-बदली कुछ इस पैमाने पर करने लगता है कि यह वृहद सूचना-मनोरंजन कंपनियों के हिसाब-किताब के लिए परेशानी खड़ी कर देता है। ये इजारेदार कंपनियाँ इन हैकरों के पीछे न सिर्फ़ अपने वक़ील छोड़ती हैं, इनके इशारे पर बौद्धिक संपदा के स्वयंभू पहरुए भी चौकन्ने हो उठते हैं। लेकिन कॉपीराइट (मिल्कियत, स्वत्वाधिकार या सर्वाधिकार) के दुर्ग में होती ज़बर्दस्त सेंधमारी को रोक पाना किसी के बूते की बात नहीं।

पाँचवीं छवि : दख़ल की गयी एक फ़ैक्ट्री में मशीन बचातीं मज़दूरिनें

ब्यूनस आयरस की ब्रुकमैन वस्त्र फ़ैक्ट्री में काम करने वाली दर्ज़िनें मशीनें तोड़ने पर आमादा सिपाहियों की टुकड़ियों से उन्हें बचाने में जुटी हैं। इस तरह अर्जेन्टीनाई सरकार की सत्ता लडाइट आंदोलन के एक विचित्र, विकृत संस्करण को जन्म देती है, जहाँ मज़दूर ख़ुद अपनी मशीनों को नष्ट होने से बचाने की जुगत में हमले के शिकार होते हैं। उक्त ब्रुकमैन फ़ैक्ट्री, एक 'फ़ैब्रिका ऑकुपादा' है, यानी मज़दूरों द्वारा क़ब्ज़ायी गयी उन फ़ैक्ट्रियों में से एक जहाँ उन्होंने एक समांतर सामाजिक व आर्थिक ढाँचा गढ़ने और उसे स्वायत्त ढंग से चलाने की कोशिश की है। वहाँ की विफल मौद्रिक अर्थव्यस्था से

आड़ा-तिरछा संबंध बनाती हुई माल और सेवाओं की एक वैकल्पिक संरचना खड़ी की है, जो वस्तुतः आर्जेन्टीना में चल रहे आर्थिक संकट के हालात में कामगारों के जीवन की ख़ासियत-सी हो चली है। ब्रुकमैन फ़ैक्ट्री की इन दर्ज़िनों ने मज़दूर वर्ग के विरोध, नारों और रणनीति को उनके सिर के बल खड़ा कर दिया है - उन्होंने उत्पादन-चक्र से अपना श्रम न हटाकर अपने उत्पाद की अपनी क्षमता की हिफ़ाज़त करने की कोशिश की है, बेशक पूंजी द्वारा वांछित दायरों से बाहर।

VI

महत्त्वपूर्ण अतिक्रमण

ये पाँचों अतिक्रमण, हाशिए के ये पंचव्यूह, अपनी कर्तृत्व की पुनर्स्थापना में जुटे प्रैक्टिशनरों के लिए रणनीतिगत मार्गदर्शन कर सकते हैं। अगर सरल ज़बान में कहें, तो उसे प्रवासी से (राष्ट्रीय) सीमाओं को तोड़कर चरैवेति की सीख, दख़ल करके जमे रहने वालों से अपनी जड़ों के प्रति आग्रह, पायरेट से पुनरूत्पादन, वितरण, और विनिमय के चपल संजाल गढ़ने का गुर, हैकर से ज्ञान बाँटने और विचारों की साझा संपदा को समृद्ध बनाने, और फ़ैक्ट्री हथियाने वाली दर्ज़िनों से ख़ुद-मुख़्तार उत्पादकता के सबक मिलते हैं।

बोर्डर को टापने की पहली अनिवार्यता जड़ अस्मिताओं की लफ़्फ़ाज़ी के प्रति सशंक रहने का नाम है, और हक़ीक़त में यह एक ऐसे प्रैक्टिशनर का तसव्वुर देता है, जो चिर-यात्री है, निर्बंध, आवारा घूमता हुआ वह अपनी अलग दुनिया की नक़्शानबीसी करता है। दूसरी ज़रूरत - क़ानूनी निज़ाम के ख़िलाफ़ आश्रय बनाने का काम - स्थान आधारित आचार है, जिसकी जड़ें तजुर्बे में हैं - यह जगहों की निज़ामत करने वालों की नहीं, बल्कि अपनी शर्तों पर, 'कहीं और' बना ठोस घर है। तदर्थ स्थायित्व के प्रति जो यह नाज़ुक ज़िद है, वह यात्री को बराये-राह सरायों पर सुस्ताते हुए मंज़िल तक और वहाँ से आगे के सफ़र की नक़्शानवीसी के लिए तैयार करती है। सांस्कृतिक सामग्री को पुनरुत्पादित करने वाले उपजाऊ संजाल बनाने की तीसरी ज़रूरत सर्वव्यापिता के बल की, विचारों व सूचनाओं को किसी तंत्र में वायरस की तरह फैलाने की ताक़त की पहचान है। ज्ञान को मिल्कियत से आज़ाद रखने की चौथी ज़रूरत उत्पादन के उद्देश्य के बारे में एक दृढ़ बयान है, ताकि लोग संपत्ति के बाड़ों से मुक्त होकर आनंद उठा सकें, या बेहतर समझ बना सकें। यह बात इस पाँचवीं ज़रूरत से भी जुड़ी हुई है कि ख़ुदमुख़्तारी और इज़्ज़त से उत्पादन कर सकें।

मौजूदा दौर की स्थापनाओं के संदर्भ में, ये पाँच मिसालें अपनी संपूर्णता में एक रैडिकल विकल्प सिरजती हैं - एक मुख़्तलिफ़ क़िस्म का नैतिक विकल्प, जो 'प्रतिरोध' - जैसे पद की लफ़्फ़ाज़ बोझिलता से आज़ाद है। यह वैश्वीकरण की एक दूसरी सच्चाई का नक़्शा भी देती हैं, जिसमें सिर्फ़ विश्वविजयी पूंजीवाद के अश्वमेघी घोड़े की अनंत यात्रा की दास्तान ही नहीं है, बल्कि उन लोगों की दैनिक बग़ावत की कहानियाँ भी कहती हैं, जिनके लिए अपने इर्द-गिर्द किसी और की खिंची हुई लक्ष्मण-रेखाओं का उल्लंघन करना जीवन की एक अनिवार्य शर्त है। नीचे से हो रहे इन सबॉल्टर्न वैश्वीकरण को समझना निहायत ज़रूरी है, क्योंकि यह हर जगह हो रहा है, पर इसे पूंजीवाद की सदियों पुरानी विस्तारवादी प्रवृत्ति - जिसे आजकल वैश्वीकरण कहते हैं - से शायद कम ही समझा गया है। इसमें विश्वायन की एक अलग तरह की चाहत निहित है, और कॉरपोरेट वैश्वीकरण के दबंग विमर्श से जूझती दीगर वैश्विक संकल्पनाएँ भी।

ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी, अतिक्रमी शहरी, इलेक्ट्रॉनिक पायरेट, हैकर और ब्यूनस आयरस की ब्रुकमैन फ़ैक्ट्री की दर्ज़िनें हक़ीक़त में प्रतिरोध की सनसनीख़ेज़ छवियाँ नहीं हैं। उनकी कार्रवाहियाँ तो महज़ जिजीविषा की स्वार्थी जोड़-घटाव की उपज हैं, न कि प्रतिरोध की चाहत या दुनिया को बदलने की मंशा की। बावजूद इसके वे अपने ही अंदाज़ में सीमाओं और सरहदों, नागर मास्टर प्लान की स्थापित

संरचनाओं को, और बौद्धिक संपदा क़ानून के नियामक पहरों व उत्पादक को उसके कर्तृत्व से वंचित करने वाली उत्पादन प्रणाली की अवज्ञा करते हुए, उसकी जड़ें खोदते हुए उसे अस्थिर रखते हैं। जिन पाँच छवियों का हमने ऊपर ज़िक्र किया है, उन्हें और मौजूदा दौर के स्थापत्य को ग़ौर से देखें, तो ये पाँच महाकाय स्तंभ फ़ौरन चिह्नित हो जाते हैं :

(1) सरहदों को पुख़्ता करना, उनकी पुनर्रचना, हिफ़ाज़त व चौकसी

(2) शहरी पुनर्नियोजन व नवीकरण की बड़ी परियोजनाएँ

(3) पूंजीवाद के हाथों दोहन के उपलब्ध सूचना नामक आख़िरी संसाधन की इच्छा – बौद्धिक संपदा को लेकर मचा हो-हल्ला यही तो है

(4) ज्ञान और संस्कृति के उत्पादन पर नियंत्रण, और

(5) उत्पादक को उसके कृतित्व से वंचित करना।

अवैध प्रवासन, शहरी अतिक्रमण, बौद्धिक संपदा तंत्र पर येन-केन-प्रकारेण हमला, हैकिंग और उत्पादकों द्वार उत्पादन-स्थानों का क़ब्ज़ा – इन सबमें पूरी दुनिया के करोड़ों लोगों द्वारा जान पर खेल कर रोज़ाना, असंगठित और स्वेच्छा से की गयी कार्रवाइयाँ शामिल हैं, और यह मौजूदा हक़ीक़त का छुपा-रुस्तम हिस्सा है।

लेकिन अजनबी, अतिक्रमी, पायरेट, हैकर और मशीनरक्षक मज़दूर की इन वैश्विक छवियों पर हम विचार करना शुरू करें तो कैसे?

VII

पूंजी और उसके अवशेष

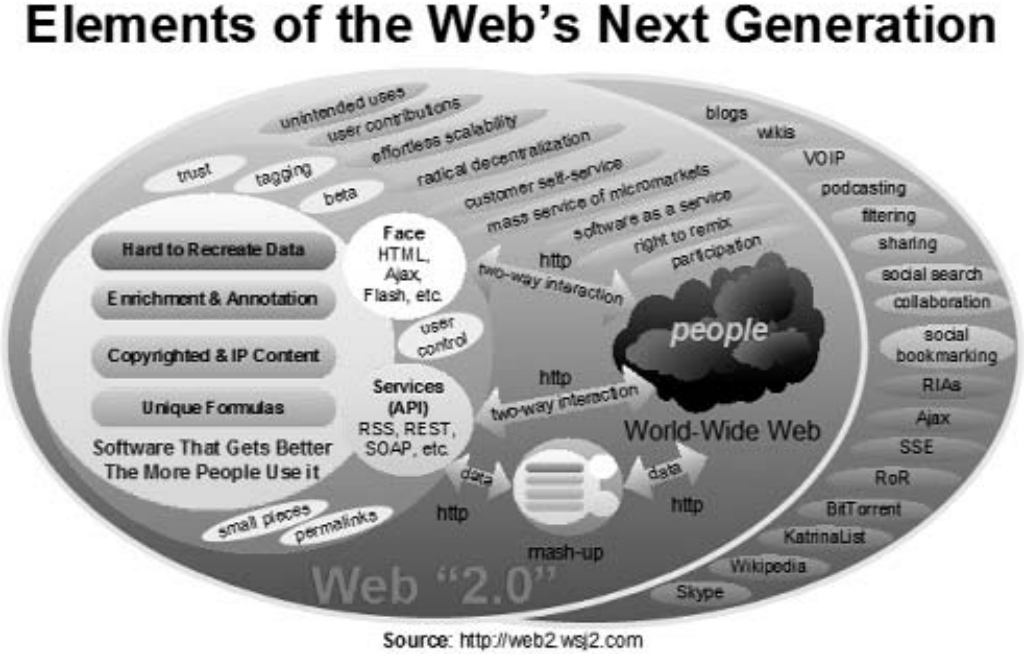

Source: http://web2.wsj2.com

सबसे पहले तो हमें यह समझ लेना होगा कि स्थापित संरचनाओं के ऐन दिल पर उकेरे गए ये अतिक्रमण हाशिए पर पड़े लोगों के हाथों संपन्न हुए हैं। उनका हाशिए पर होना कुछ नहीं, बल्कि पूंजीवादी विश्वविजय की अश्वमेघी यात्रा के दौरान अवशिष्ट हैसियत को प्राप्त करना है। 'अवशेष' से हमारी मुराद उन तत्वों से है, जो पूंजी की बहाव प्रक्रिया में डूब-उतराकर कचरा या उच्छिष्ट-रूप में बच जाते हैं, जिन्हें दरकिनार कर दिया जाता है, या बस फेंक दिया जाता है।

पूंजी का स्वभाव है कि वह श्रम के पुरानें रूपों, या पुरानी पड़ गयी जीवन-शैलियों को वर्तमान में उपादेय बनाए या फिर जिनका कोई इस्तेमाल न रह गया हो, उन्हें बेकार क़रार दे दे। किसी नए कारख़ाने की यही विडंबना भी है कि नए रोज़गार पैदा करने की जगह वह अपने आसपास रहते आए लोगों को बेरोज़गार कर देती है; एक नया बाँध सिंचाई के साधन तो क्या देगा, पहले लोगों को उनकी जड़ों से विस्थापित कर देता है, नया राजमार्ग यातायात तो देगा, पर जहाँ से गुज़रेगा पहले वहाँ रहने वाले लोगों व समुदायों के आवागमन को आसान नहीं बल्कि मुश्किल कर देगा। दूसरी तरफ़ जिस तरह चोटिल होने पर खिलाड़ी टीम में जगह खो देता है, उसी तरह बंद हुई फ़ैक्ट्री अपनी जगह के दरवाज़े भी मज़दूरों के लिए बंद कर देती है। इसीलिए मज़दूरों के लिए ज़रूरी है कि वे इसे किसी तरह खुला रखें, यह काम करती रहे ताकि उनका भी आबोदाना चलता रहे।

उन जगहों पर रहने वाले लोगों का क्या होता है, नक़्शे से ग़ायब हो जाती हैं? वे कहाँ जाते हैं? बेशक, वे उस नक़्शे की तलाश में निकल पड़ने के लिए मज़बूर हो जाते हैं, जिसने उन्हें त्याग दिया है। लेकिन अपना सब कुछ छोड़ कर नयी दुनिया बनाने की कोशिश में वे तन्हा नहीं होते। उनके साथ होते हैं पहले के अतिक्रमण और यात्राओं के संजालीय सफ़रनामे, और साथ ही मौजूदा संजालित दुनिया के बारे में सर्वसुलभ, अड़ियल, और अंदरूनी जानकारियाँ, जिनका इस्तेमाल वे जहाँ चाहे करेंगे।

नेटवर्क में रिसाव

यह नेटवर्क काम कैसे करता है, और किस हद तक खुद को हमारी चेतना पर ज़ाहिर करता है? हम इसे रिसाव के रुपक से समझना चाहते हैं। रिसाव से हमारी मुराद स्थायी संरचनाओं की दीवारों पर पछाड़ खाकर उनमें यहाँ-वहाँ के छेद-विवर से, घुस-पैस कर फैलने वाली तरल धाराओं से है। घुसपैठ का यह सिलसिला तब तक चलता है, जब तक यह रिसाव ढाँचे से अंदर-बाहर एकमेक होकर उसे दुर्बल न कर दे। नम हो-होकर ढाँचा अंततः भुर-भुराकर ढह जाता है।

व्यापक धरातल पर रिसाव उन कृत्यों को कह सकते हैं, जो ढाँचों की सतह पर उपलब्ध छिद्रों के मार्फ़त उसके अंदरूनी भाग में, उसके मर्म में दाख़िल होकर उसे कमज़ोर कर दे। शुरू-शुरू में यह प्रक्रिया अदृश्य हो सकती है, लेकिन धीरे-धीरे ढाँचे पर सिलवटें बनने लगती हैं, उसकी शक्ल इस क़दर बदरंग और विरूपित हो जाती है कि उसके स्थायित्व, उसकी दृढ़ता के बारे में चिंताएँ होने लगती हैं।

रिसाव अपने आप में कोई वैकल्पिक रूप नहीं है - इसे तो अपने होने के लिए भी एक ढाँचे के अस्तित्व की दरकार है - लेकिन यह ऐसी नयी स्थिति पैदा करने में सक्षम है कि संरचनाएँ नाज़ुक होकर, छीज कर बेकार हो जाएँ। इसके आधार पर हम एक वैकल्पिक कल्पना-क्रीड़ा अवश्य कर सकते हैं, हम देखने लगते हैं कि रिसाव के ज्वार-भाटे से दीवारों के चेहरे कैसे बनते-बिगड़ते हैं। संजालित दुनिया में रिसाव के ऐसे कितने ही कृत्य होते रहते हैं, जिनमें से कुछ को हमने ऊपर बयान किया। इस तरह बिना लंबा-चौड़ा दावा किए ये संरचनाओं को अस्थिर बना देते हैं। इस तरह अतिक्रमी शहर को पुनर्परिभाषित करता है, हालाँकि उसे जीने के लिए शहर की दरकार तब भी रहेगी। बिला इजाज़त सीमा पार करने वाला अपने कृत्य के ज़रिए सीमा की पुनर्परिभाषा करता है - उसे बेनामी सिद्ध करते हुए उसे सर्वत्र ज़ाहिर करता जाता है, यहाँ तक कि शहर के ऐन केन्द्र में भी - इस हद तक कि नागरिक एक संदेहास्पद अजनबी बन जाता है, और सरकार चलाने के लिए नागरिकता पर जो साझा राय होती

है, वही चरमराने लगती है। अधिकृत और अनधिकृत प्रति के फ़र्क़ को मिटाकर पायरेट सूचना व संस्कृति का प्रसार करता है, और साथ-साथ बौद्धिक संपदा का अवमूल्यन भी करता जाता है। वक़्त के साथ अदृश्य संरचनात्मक बदलाव करके आदर्श नियमों में पेंच पैदा करना रिसाव का दूसरा नाम है।

रिसाव की अवधारणा के लिए यह ज़रूरी है कि व्यक्तिगत बग़ावतों को उनके मौलिक तजुर्बे से काटकर देखा जाए। अपनी अर्थवत्ता के लिए उन्हें व्यापक संदर्भ में पैबस्त माना जाना चाहिए। और यही व्यापकतर संदर्भ संजालित संदर्भ है, एक ऐसा संदर्भ जहाँ विभिन्न बिंदुओं के बीच लगातार गतिमानता निहायत ज़रूरी है।

VIII

नेटवर्क का इतिहास : एक समस्या

लेकिन नेटवर्क का इतिहास कैसे समझा जाए? इस दिशा में एक बड़ी मुश्किल तो यही है कि दुनिया में "अज्ञानता की विषमता" है। हम सब दुनिया के बारे में अलग-अलग तरीक़े से और कमोबेश अज्ञानी ही हैं। जिसके चलते नेटवर्क हमारी आँखों से बार-बार ओझल होता रहता है। इसी वजह से वैश्विक संजाल तो बनते हैं, पर दुनिया के कई हिस्सों में फैले कई दीगर संजाल नज़रअंदाज़ कर दिए जाते हैं, क्योंकि उन हिस्सों के बारे में बोलने के साधन नहीं हैं, किसी को यह भी पता नहीं कि उन हिस्सों में ऐसे लोग हैं, जो नेटवर्क की भाषा बोलते हों। इस तरह नेटवर्क की ज़बान एक गतिमान स्थानीय बोली बनकर रह जाती है।

मिसाल के तौर पर, यह काफ़ी संभव है कि कोई हिन्दुस्तानी मीडियाकर्मी या सांस्कृतिक कार्यकर्ता किसी यूरोपीय के हिन्दुस्तान संबंधी ज्ञान से ज़्यादा जानकारी रखता हो। उपनिवेशवाद ने भले ही कुछ समाजों को विपन्न करके छोड़ा हो, लेकिन साथ ही वैश्विक यथार्थ के बारे में कतई अनवगत नहीं हैं। इतिहासकार दीपेश चक्रवर्ती ने हमें याद दिलाया है,

> "जहाँ तक इतिहास के अकादमिक विमर्श का सवाल है, 'युरोप' इतिहास मात्र का स्वायत्त, सैद्धांतिक विषय बना रहता है, उसका भी, जिसे हम 'भारतीय', 'चीनी', 'कीनियाई' या कुछ और कहते हैं। एक ख़ास ढर्रा तो है, एक ऐसा अंदाज़ कि बाक़ि इतिहास उस आदि या प्रभु इतिहास का ही कोई अन्य रूप बनकर उभरता है, जिसे हम 'युरोप का इतिहास' कहते हैं।"[6]

लेकिन इसी को अगर हम युरोपीय नज़रिए से देखें तो हमारी दृष्टि कुंठित हो जाएगी, हमें पूरी दुनिया सिर्फ़ युरोपीय इतिहास के साँचे में ढली नज़र आएगी। यानी बाक़ि दुनिया अकसर मूल की नक़ल करती हुई नक़ल-मात्र है। हम ये सब क्यों कह रहे हैं : महज़ यह दुहराने के लिए नहीं कि हमारे नज़रिए अपूर्ण हैं, बल्कि यह विषमता हमें रिसाव से दीवार पर बने चेहरे या दिलचस्प पैटर्न पहचानने नहीं देती। हमारे सरोकार शायद वही हों, हम शायद खुद विस्थापन के स्रोत या स्थान हों, तो भी मुमकिन है कि वैकल्पिक संकल्पनाएँ हमारी नज़र से फिसल-फिसल जाएँ।

IX

आइए प्रैक्टिस का अलग प्रतिमान बनाएँ

हाल में 'न्यूरोपॉलिटिक्स' विषय पर एक किताब[7] पढ़ते हुए हमारी नज़र एक ऐसे प्रयोग (हेल्ड और हाम्स) पर गयी जिसे हमारी समझ कैसे बनती है, इस विषय पर शास्त्रीय हैसियत हासिल हो चुकी है। हम इसी प्रयोग का सहारा लेकर अपनी बात आगे बढ़ाएँगे।

तजुर्बा यूँ किया गया कि बिलौटों के दो समूहों को पहले अंधकार में रखकर पाला गया, और फिर अलग दशाओं में प्रकाश में लाया गया। पहले समूह को खुले में वैसे ही छोड़ दिया गया जैसे बिल्ली के बच्चे होते हैं, यानी उन्हें आसपास की चीजों को सूँघने, छूने, पंजे मारने, चढ़ाइयों पर चढ़ने-उतरने

और मुफ़ीद जगहों पर सोने की आज़ादी दी गयी। दूसरे समूह के बिलौटों को (उसी माहौल में रखते हुए) टोकरियों में रखकर टहलाया गया, उन्हें दुनिया को अपने ढंग से देखने-महसूस करने और समझने की आज़ादी नहीं दी गयी।

इस तरह पाले गए दोनों समूह बिल्कुल मुख़्तलिफ़ अंदाज़ में बड़े होते हैं। कुछ हफ़्ते इस तरह रखने के बाद जब उन्हें छोड़ा गया तो पाया गया कि पहला समूह आम हरकतें कर रहा है, जबकि जिस समूह को घुमाया-फिराया जा रहा था, वह ऐसे बर्ताव कर रहा हो जैसे दृष्टिहीन हो - चलते हुए चीज़ों से टकरा जाना, या किनारों पर से ढुलमुला कर गिर जाना। साफ़ है कि माहौल को मुकम्मल तौर पर महसूस करने की आज़ादी उसके बोध के लिए बिल्कुल बुनियादी है।

इस तजुर्बे की क्या अहमियत है? न्यूरोसाइंस के हलक़े में ऐसे प्रयोग के आधार पर मानस-वैज्ञानिक व संज्ञानशास्त्री मस्तिष्क के प्रातिनिधिक मॉडलों से हटकर बोध के 'एनैक्टिव' मॉडल की ओर बढ़ रहे हैं, जिसके तहत अन्य चीज़ों को महज़ एक अमूर्त दृश्य न समझकर पूरी अनुभवात्मक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है, यानी कि एक इंद्रिय से हासिल सूचना दूसरी सभी इंद्रियों से प्राप्त जानकारियों से इस तरह दृष्टि ज़िन्दगी की प्रक्रियाओं में पैबस्त हैं, और यह हमारी क्षमता के लिए ज़रूरी है कि हम अपने द्वारा हासिल तजुर्बे के हिसाब से प्रातिनिधिकता को ढालें। जब हम कोई क़दम उठाते हैं, किसी से टकराते हैं, या किसी औचक शोर से अचंभित होते हैं, जब हमारी मुलाक़ात किसी अजनबी, क्रुद्ध, या दोस्ताना चेहरे से होती है, या जब हम किसी बंदूक़ या दूध के कटोरे से रू-ब-रू होते हैं तो हमें पता होना चाहिए कि क्या होता है।

इस तरह हम कहना चाहते हैं कि कला-/मीडिया-कर्मी का दुनिया से क्या रिश्ता बनेगा, यह तीन चरणों के साक्षात्कार पर निर्भर करेगा। सबसे पहले तो यह पहचान करना कि कला पड़ोस के हाशिए के रियाज़ से जुड़ा है, जिनके नुमाइंदे हमारे पाँचों अतिक्रमियों के रूप में हमसे मिल चुके हैं। दूसरे, खुद को रियाज़ करने वाला मानना, और यह कि अपने रियाज़ की छिपी संभावनाओं को उभारने के लिए उन पाँचों अतिक्रमियों को कान लगाकर सुनना कि वो दुनिया से कैसे जूझते हैं। और आख़िर में, अतिक्रम के हर मिसाल से हम जो ग्रहण करते हैं, उसे हम अपने कर्म, अपने रियाज़ में शामिल करें कुछ इस तरह कि वह संजालित दुनिया के रचनात्मक कर्तृत्व के प्रति हमारे सोचने, करने, व होने के तरीक़ों को, हमारे संपूर्ण रवैये को पुनर्परिभाषित करें।

हमारे लिए यहाँ ग़ौरतलब बात यह है कि रियाज़ करने वाले हर व्यक्ति के हर साक्षात्कार/मुठभेड़ को हम पहचानें, बस यह ख़याल रहे कि पड़ोस में रियाज़ों का एक वृहत्तर संजाल है।

जब हम उनकी विशिष्टताओं पर ग़ौर करेंगे तभी हमें दो या दो से ज़्यादा दृष्टांत आपस में कैसे जुड़ते हैं, यह समझ में आएगा। किसी तरह अन्य अवशिष्ट में अर्थ की तलाश हो - अवशेष मिले - या किस तरह एक रंध्र से दूसरे तक का रिसाव संजाल के एक बिंदु को मात्र गुरुत्वाकर्षण के बल पर दूसरे से जोड़ता है, यह साफ़ होगा। यहाँ बहने का मंसूबा उतना अहम नहीं है जितना कि बहाव की ढलान, उसके रास्ते का पृष्ठ तनाव, और वह दूसरी जो बहाव तय करता है। चाहत, मंसूबे या प्रतिरोध जैसे गुण तो चस्पाँ किए जा सकते हैं, लेकिन उनका संजाल के अंदर वाक़ई क्या हो रहा होता है, उससे क्या लेना-देना?

X

कला की रियाज़त और संजालित संवाद की आचार-संहिता

कला और कर्म संबंधी कर्म का इन सबसे क्या ताल्लुक़ है? संजालित दुनिया में अंतर्क्रियाओं के गहरे धँसाव से कोई कलाकर्मी भला क्या सीखे? हमारा तर्क होगा कि कला-क्षेत्रों में चल रही विविध

रियाज़तों को, रिसाव के रंग-ढंग को, संजालित हक़ीक़त के विभिन्न पहलुओं को समझने में सक्षम होना चाहिए।

ऐसा हो सके, इसके लिए शायद कलाकर्मी को संजाल के विभिन्न अवस्थितियों के इतिहासों, नानाविध स्थलों के बीच के संवाद की आचार-संहिता को या तो खोजना होगा या नए सिरे से रचना होगा; संसाधन-निर्माण और उसको आपस में बाँटने, ढाँचों के भीर ढाँचे, और संजाल के अंदर अपने संजाल बनाने के तौर-तरीक़े जुगाड़ने होंगे। मुख़्तलिफ़ क़िस्म के कार्य-व्यापारों के बीच कौन से साझा अर्थ-क्षेत्र बनें, इसको तय करने के लिए लचीली नियामकताएँ सिरजनी होंगी। और जैसे ही हम इस आचार-संहिता का आविष्कार करने लगेंगे, उनके अलग-अलग नैतिक, भावात्मक, संज्ञानात्मक प्रतिध्वनियाँ हमारे समीकरण में घुस आएँगी। हम ख़ुद कला-कर्म को एक कृत्य, एक प्रक्रिया या किसी संजाल में आपस में बातचीत, या अंतर्क्रिया करते तत्वों के रूप में भी देखना शुरू कर सकते हैं।

रिसाव के कृत्य से अगर कोई नयी आकृतियाँ बननी हैं, तो कई नए संवाद आरंभ करने होंगे, और गतिमान बोलियों को एक-दूसरे से रगड़-धसड़ कर नयी संजालित संकर भाषाओं का निर्माण करना होगा। संजालित हक़ीक़त के इस माहौल में कला शायद ख़ुद दीवार पर विकृतियाँ रचना चाहे, ढाँचे में कुछ तनाव घोलना चाहे, पर साथ ही यह भी मुमकिन हो कि दीवार पर फैलते दाग़ के बीच चेहरे पढ़े जा सकें। कुछ दिलचस्प आकृतियाँ, कुछ विकल्पनाएँ ढूँढी जा सकें, शायद संयोग से ही।

(यह पाठ मई 2003 में व्राकेला, पोलैंड के डब्ल्यूआरओ, सेंटर फ़ॉर मीडिया आर्ट में संपन्न ग्लोबेलिका "कॉनसेप्चुअल ऐंड आर्टिस्टिक टेंशन्स इन द न्यू ग्लोबल डिशऑर्डर" विषय पर एक सिम्पोज़ियम में मोनिका नरुला (रक़्स मीडिया क्लोक्टिव) द्वारा दिए गए एक व्याख्यान का हिन्दी रुपांतरण है)

अनुवाद: कमल कुमार मिश्रा

नोटस:

1 टोनी सैमुअल, प्राइस वाटर हाउस कॉपर्स इंटेलेक्चुअल एसेट मैनेजमेंट ग्रुप इवैल्येटिंग आई.पी. राइट्स: इन सर्च ऑफ़ ब्रैंड वैल्यू इन द न्यु इकॉनमी

2 रक़्स मीडिया कलेक्टिव का एक वीडियो टेक्स्ट और साउंड इनस्टॉलेशन जो अन्त:व्यैक्तिक संचार के नयाचारों को ऑनलाईन लेबर डेटा आउटसोर्सिंग व 'नए' अर्थतंत्र में सुदूरस्थ माध्यम के बनने या बिगड़ने के मुक़ाबले में रखता है। जेनरेलिया फ़ाउंडेशन, विएना के लिए उर्सूला विएमान की अध्यक्षता में संपन्न ज्यॉग्रफ़ी ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ मोबिल्टी प्रदर्शनी में प्रस्तुत (जनवरी-अप्रैल 2003)

http://www.absolutearts.com/artsnews/2003/01/17/30667.html

http://www.foundation.generalia.at/exhibit/2003_1_geo_indexe.htm

3 रक़्स मीडिया कलेक्टिव, "कॉल सेंटर कालिंग: टेक्नॉल्जी, नेटवर्क ऐंड लोकेशन", सराय रीडर 03: शेपिंग टेक्नॉल्जिज़, दिल्ली, फ़रवरी 2003

http://www.sarai.net/journal/03pdf/177-183-raqsmediac.pdf

भारत में कॉल सेंटर उद्योग के लिये यहाँ देखें

मार्क लैंडलर, "हाय आई एम इन बैंगलोर (बटआई डेयर नॉट टेल)" न्यूयार्क टाइम्स (टेक्नॉल्जी सेक्सन), मार्च 21, 2001

http://www.nytimes.com/2001/03/21/technology/21CALL.html?ex=105435

3600&en=757633f99208ca6&ei=507indiacalling - अ रिपोर्ट ऑन द कॉल सेंटर इंडस्ट्री इन इंडिया

4 एंड्रयू अटवैल, मेडिवल मैन्यूस्क्रिप्ट मारजिनेलिया ऐंड प्रोवर्ब्स, 1995
http://www/heyotwell.com/work/arthistory/marginalia.html

5 नोआमी क्लेन, आर्जटिनॉज़ ल्यूडिट् रूलर्स: वर्कस इन द आक्यूवाइड फैक्ट्रिज़ हैव ए डिफ़रेंट विज़न: स्मैश द लॉजिक नॉट द मशीन्स, डिसिडेंट वॉईस, अप्रैल 25, 2003
http://www.dissidentvoice.org/articles4/klein-Argentina.htm

6 दीपेश चक्रवर्ती, "पोस्टकोलोनियलिटी ऐंड द आरटिफ़िस ऑफ़ हिस्ट्री : हू स्पीक्स फ़ार "इंडियन पास्ट्स", रीप्रेज़ेन्टेशन्स, 37 (विंटर, 1992)

7 विलियम इ कोनोली, "न्यूरोपोलिटिक्स: थिकिंग, कल्चर, स्पीड" थ्योरी आउट ऑफ़ बाउन्डस, नंबर 23, मिन्नेसोटा यूनिवर्सिटी, 2002

8 डेटा ब्राउज़र 02: इंजिनियरिंग कल्चर, संपादन: ज्यॉफ़ फ़ॉक्स, जोआसिया क्रिसा, आटोनोमीडिया, न्यूयॉर्क, 2005

9 इम्मीटिरियल लेबर: वर्क, रिसर्च ऐंड आर्ट, संपादन: मारिना विशमिड्त, मेलानी गिलिगान, ब्लैक डांग पब्लिशिंग, लंदन/न्यूयॉर्क